M.A.Part 1,Paper II Topic - प्राचीन भारत में शिक्षा:वैदिक काल की शिक्षा की विशेषताएं (Education in Ancient India:Characteristics of Vedic Age Education)

इतिहासकार ए.एस.अक्तूबर ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारतीय शिक्षा 'में शिक्षा का अर्थ अपने-आपको सभ्य एवं उन्नतिशील होना बताया है ।शिक्षा का संबंध जिन्दगी की आखिरी सांस तक बना रहता है ।ज्ञान प्राप्ति का सबसे बड़ा स्रोत प्राचीन काल में शिक्षा को माना जाता है ।सुभाषिते रत्न संग्रह ने मनुष्य की तीसरी आँख ज्ञान को ही माना है ।महाभारत ने तो यहाँ तक कहा है कि विद्या के समान विश्व में ज्ञान का कोई दूसरा क्षेत्र ही नहीं है ।इस लोक में मोक्षप्राप्ति विद्या के ही कारण हो सकती है ।समृद्धि और प्रगति का मुख्य आधार विद्वानों ने शिक्षा को माना है ।समस्याओं को दूर करने एवं जीवन की वास्तविकता को समझने योग्य हमें शिक्षा ही बनाती है ।शिक्षा के बिना प्राणी को सुभाषिते रत्न संग्रह ने अंधा माना है ।बुद्धि, बल और कार्यक्षमता में वृद्धि के लिए शिक्षा सबसे ज्यादा सहयोगी है ।शिक्षा एकांत का मित्र है ।विद्याविहीन मनुष्य को भतृहरि ने पशुतुल्य माना है ।

1.1 प्राचीन भारत शिक्षा : वैदिक काल की शिक्षा की विशेषताएँ (Education in Ancient India Characteristics of Vedic Age Education) मानव को अतीत की वास्तविकताओं का दर्शन कराता है ।वास्तव में मानव जाति की उपलब्धियों तथा क्रियाकलापों का चित्रण है। इतिहास बीते समय के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक आदि पक्षों का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। भारतीय शिक्षा के इतिहास को मोटे तौर पर निम्नांकित कालखण्डों विभाजित किया जा सकता है-

(1) वैदिक काल (2500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक),
(2) बौद्ध काल (500 ई.पू. से 1200 ई. तक) ,
(3) मुस्लिम काल (1200 ई. से 1800 ई. तक) ,
(4) ब्रिटिश काल (1800 ई. से 1947 ई. तक)
(5) काल (1947 ई. के बाद का काल)

(1)वैदिक काल (Vedic Period) यह काल वेदों की रचना तथा वेदों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था का काल है । इस में काल खण्ड के अंतिम वर्षों में ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद आदि ग्रंथो की रचना भी वेदों के भाष्य के रूप में हुई थी ।

वैदिक काल की शिक्षा की विशेषताएँ (Characteristics of Vedic Age Education)-इस काल की शिक्षा प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है-

1.**2 परा एवं अपरा -**वैदिक काल में जीवन दो प्रकारों में विभक्त था-(अ) परा तथा (ब) अपरा। परा का अर्थ था- ज्ञान, कर्म तथा उपासना के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति करना। अपरा का अर्थ था- संगठित एवं नियोजित व्यवस्था का संचालन करना ।परा के लिए अलौकिक विद्याओं का ज्ञान आवश्यक था और अपरा के लिये लौकिक विद्याओं का ज्ञान महत्वपूर्ण था।

1.**3 वैदिक साहित्य में शिक्षा (Education in Vedic Literature)-वैदिक** साहित्य में शिक्षा शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है, यथा - विद्या, ज्ञान,प्रबोध तथा विनय आदि। इय युग मे शिक्षा शब्द का प्रयोग व्यापक तथा संकुचित, दोनों ही अर्थों में किया गया है । व्यापक अर्थ में मनुष्य को उन्नत तथा सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाना ही शिक्षा है। शिक्षा की यह प्रक्रिया जीवन-पर्यन्त चलती रहती है। संकुचित अर्थ में शिक्षा का तात्पर्य उस औपचारिक

शिक्षा से था, जिसे बालक अपने प्रारम्भिक जीवन के कुछ वर्षों तक गुरुकुल रहकर ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करता हुआ अपने गुरु से प्राप्त करता था। **ए.एस. अल्तेकर (A.S. Altekar)** के शब्दों में " वैदिक युग से आज तक शिक्षा के सम्बन्ध में भारतीयों की मुख्य धारणा यह रही है कि शिक्षा प्रकाश का स्रोत है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शन करता है।"

1.4 शिक्षा का महत्व (Importance of Education)-प्राचीन भारत में शिक्षा महत्त्व बहुत अधिक था। विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों में शिक्षा की महती गरिमा का उल्लेख किया गया है । महाभारत में विद्या का स्थान किसी भी वस्तु से बहुत ऊंचा बताया गया है। विद्या की तुलना भारतीय साहित्य में माता, पिता और स्त्री से की गई है। इन्हीं के समान इसको कल्याणकारी बताया गया है । यही नहीं, इसकी महत्ता यहाँ तक की गई है कि जिससे किसी भी कार्य के लिए उसमें पात्रता आती है। तभी वह धर्म और धन भी प्राप्त करता है, तो अन्त में सुख का कारण बनता है। यही कारण है कि इसको संशय-विनाशक ,परोक्ष-दर्शक, शास्त्रों का लोचन आदि कहा गया है। यहाँ तक इसकी गरिमा बताई गई है कि जो विद्याविहीन है, वह दृष्टि हीन है। निरुक्त में कहा गया है विद्याविहीनः पशुबलि समान
(16) वेद में भी कहा गया है कि यदि एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक विवेकशील एवं विद्वान है, तो इसलिए उसकी दृष्टि पैनी हो गई और बुद्धि तीक्ष्ण ।अर्थात विद्या से ही विप्रत्व की उपलब्धियों होती है ।परंतु मात्र ज्ञान-चक्षु को ही विकसित करके शिक्षा शान्त नहीं होती थी, अपितु यह समाजीकरण की भावना को भी उद्वेलित करती थी । मनु ने बताया कि स्वच्छता तथा सामाजिक व्यवहार का ज्ञान बालक को सबसे पहले करना चाहिए । इसी से विवेक की भावना बालक में आती हैं, जिससे वह जीवन में उचित या अनुचित के भेद कर सकता है एवं दोषों से अपनी रक्षा कर पाता है । बालकों को मानसिक, सामाजिक शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा भी दी जाती थी । शिक्षा जीविकोपार्जन का भी साधन थी । यह मनुष्य में बल का स्रोत माना गया है । यह भौतिक सुख के साथ, आध्यात्मिक लाभ का भी स्त्रोत है । डॉ ए.एस.अक्तूबर के शब्दों में हम कह सकते हैं कि-"शिक्षा को प्रकाश और शक्ति का ऐसा स्रोत माना जाता था, जो हमारी शारीरिक, मानसिक, भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों तथा क्षमताओं का निरंतर एवं सामंजस्यपूर्ण विकास करके, हमारे स्वभाव को परिवर्तित करती है और उसे उत्कृष्ट बनाती हैं ।"

1.5 **शिक्षा के उद्देश्य व आदर्श (Aim and Ideals of Education)** डॉ ए.एस. अल्तेकर के शब्दों में, प्राचीन भारतीय शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों एवं आदर्शों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है-
(क) ईश्वर-भक्ति एवं धार्मिकता का समावेश,
(ब) चरिध का निर्माण,
(ग) व्यक्तित्व का विकास,
(4) नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्य पालन की भावना का समावेश,
(छ) सामाजिक कुशलता की उन्नति तथा
(च) राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार।

डॉ. आर.के. मुखर्जी के अनुसार, "शिक्षा का उद्देश्य पढ़ना नहीं था, अपितु ज्ञान और अनुभव को आत्मसात करना था। इसके अतिरिक्त शिक्षा का उद्देश्य चित्त वृत्तियों का निरोध था।"

1.6 विद्यारम्भ संस्कार (Vidyarambha Sanskar) डॉ . वेद मित्र के अनुसार, "विद्यारम्भ संस्कार पांच वर्ष की आयु में होता था और साधारण: सब बालकों के लिये था । इसको कुछ विद्वान् ने 'अक्षरस्वीकारणम्' के नाम से भी पुकारते थे।

1.**7 उपनयन संस्कार (Upanayan Sanskar**) इसका शाब्दिक अर्थ है-'पास ले जाना। दूसरे शब्दों में बालक को वैदिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये गुरु के पास ले जाया जाता था। गुरु बालक को गायत्री मंत्र का उपदेश देता था।

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण के बालकों का उपनयन संस्कार क्रमशः 8 वर्ष, 11 वर्ष तथा 12 वर्ष की आयु में वसन्त ऋतु, ग्रीष्म ऋतु तथा शरद ऋतु में होता था।

1.**8 समावर्तन संस्कार (Samavartan Sanskar)-इसका** शाब्दिक अर्थ है 'घर लौटना'। यह संस्कार लगभग 25 वर्ष की आयु में होता था, जब छात्र गुरु के घर से लौटकर अपने घर जाता था और ब्रह्मचर्य आश्रम का परित्याग करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। इस संस्कार के समय गुरु मंत्र को मधुपर्क देता था और उसके बाद समावर्तन उपदेश देता था। उदाहरणार्थ-हे शिष्य, सर्वदा सत्य बोलना, अपने कर्तव्य का पालन करना आदि।

1.**9 अध्ययन की अवधि (Duration of Study**)-प्राचीन काल में अध्ययन की अवधि सामान्यत: 12 वर्ष थी। इस अवधि में छात्र केवल एक वेद का अध्ययन करता था। यदि एक से अधिक वेदों का अध्ययन करना चाहता था, तो उसे 12, 24, 36 तथा 48 वर्ष की आयु तक अध्ययन करना पड़ता था ऐसे छात्र क्रमशः स्नातक, बसु, रूद्र तथा आदित्य कहा जाता था।

1.**10 शिक्षण-विधि(Teaching Method)प्राचीन** काल में शिक्षण विधि-प्रवचन और व्याख्यान के रूप में मौखिक थी। इसके मुख्य अंग थे-श्रमण, मनन, चिंतन, स्वाध्याय तथा पुनरावृत्ति ।

1.**11 गुरु व शिष्य (Teacher and Student) प्राचीन** भारतीय समाज में अध्यापक को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त धा। अपरिपक्व मानसिकता वाले बच्चों का भार अपने ऊपर लेकर वे उनको योग्य, अनुभवी एवं उपयोगी तथा सुसंस्कृत नागरिक बनाते थे। अध्यापक अपने ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानता रूपी अन्धकार को दूर कर समाज में एक नई दिशा एवं प्रकाश फैलाते थे। अत: गुरु के प्रति कृतज्ञता एवं अधिक से अधिक सम्मान करना शिष्य का कर्तव्य था । वह माता पिता से भी अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि ज्ञान से शिष्य को प्रकाश दिखाता है । अत: गुरु आध्यात्मिक पिता के रूप में पूज्य होता है। गुरु-शिष्य का 'पिता-पुत्र' जैसा स्नेहपूर्ण सम्बन्ध वैदिक शिक्षा के अतिरिक्त कहीं अन्य दृष्टिगोचर नहीं होता।

1.12 कक्षा-नायकीय पद्धति (Monitorial System)प्राचीन भारतीय शिक्षा की महत्वपूर्ण विशेषता कक्षा-नायकीय पद्धति (Monitorial System) थी। इसमें उच्या कक्षाओं के बुद्धिमान बालक शिक्षक की अनुपस्थिति में निम्न कक्षाओं के छात्रों को पदाते थे।

1.13 वेशभूषा तथा आचार-व्यवहार (Dress and Behaviour)-मनु के अनुसार विभिन्न जातियों के छात्रों की वेशभूषा विभिन्न थी , उदाहरणार्थ-

(क**) ब्राह्मण- मेखला मुंज** की, ऊपरी भाग पर काल मृग की खाल तथा निचले भाग पर सन के कपड़े का प्रयोग करते थे ।

(ख**) क्षत्रिय** मेखता तात की, ऊपरी भाग पर चित्तीदार मृग की खाल तथा निचले भाग पर रेशम के कपड़े का प्रयोग करते थे ।

(ग**) वैश्य** मेखला ऊन की, ऊपरी भाग पर बकरे की खाल तथा निचले भाग पर ऊन के कपड़े का प्रयोग करते थे।
तीनों वर्गों के छात्रों को मर्यादा, शिष्टाचार और आत्मसंयम के नियमों का अनुकरण करना पड़ता था। उन्हें काम, क्रोध, मद, लोभ तथा दूषित विचारों से युक्त रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था!

अध्यापक का स्थान (Position of Teacher)-प्राचीन काल में अध्यापक का स्थान उच्च था, क्योंकि वेदों की पढ़ाई मौखिक थी एवं गुरु के द्वारा ही शब्दोच्चारण तथा वेदाध्ययन संभव था। उपनिषदों के काल में रहस्यवाद से

सम्बन्धित दर्शन के चिंतन के कारण गुरु का स्थान और भी बढ़ गया क्योंकि मोक्ष प्राप्ति के लिए गुरु पर ही निर्भर रहना पड़ता था। मार्गदर्शन उस पर ही निर्भर था। इस समय पुस्तकें दुर्लभ तथा बहुमूल्य होती थी, इस कारण प्रायः विद्यार्थी को गुरु पर ही निर्भर रहना पड़ता था। उद्योग-धंधों में तो बहुत कुछ तकनीकी ज्ञान अध्यापक से ही सीखना पड़ता था।

शिक्षा का ढंग (Mode of Education)-प्राचीन समय में स्नातकों को योग्य अध्यापक बनने के लिए किसी प्रकार की शिक्षा आवश्यक नहीं समझी जाती थी। शिक्षक विद्यार्थियों को पढ़ाते समय हर एक को पृथक-पृथक शिक्षा देते थे। अपने अध्ययनकाल में ही विद्यार्थियों को शास्त्रार्थो की कठिन अग्नि परीक्षा में सम्मिलित होना पडता था । वहाँ उन्हें विपक्ष को विद्वत्तापूर्ण खंडन तथा स्वपक्ष का मंडप करना पडता था । अतः अध्ययन की समाप्ति तक उनकी तर्क और वाद-विवाद की शक्तियां विशेष रूप से पुष्ट हो जाती थी ।ज्येष्ठ और योग्य विद्यार्थियों को नये छात्रों को पढाने का अवसर भी दिया जाता था ।इस प्रकार समावर्तन के समय तक स्नातकों को अध्ययन का प्रचुर अनुभव हो जाता था ।

अध्यापक की योग्यता (Qualification of a Teacher)- अध्यापक उच्च चरित्र वाला आदर्श व्यक्ति होता था ।वह शांत स्वभाव का और निष्पक्ष तथा अपने विषय में पारंगत होता था ।
उसे वाक्-चतुर, प्रत्युत्पन्नमति, तार्किक, रोचक कथाओं का ज्ञाता तथा उसे कठिन से कठिन पुस्तकों का तत्काल अर्थ कर देने वाला होना आवश्यक था । आचार्य को विद्वान ही नहीं, अपितु पुट अध्यापक भी होना चाहिए तथा उसे अपनी पवित्रता, चरित्र, विद्वता और सदाचारी जीवन द्वारा विद्यार्थियों पर स्थायी प्रभाव डालना पडता था ।
शुल्क और वेतन (Fees and Salary)- प्राचीन समय में अध्यापन कार्य उच्च संहिता के रूप में माना जाता था । अधिक से अधिक छात्रों को भर्ती करने के लिए उनमें होड लगी रहती थी ।आवश्यक योग्यताओं को पूरा करने पर सब छात्रों को बिना शुल्क का ध्यान किये, प्रवेश दे दिया जाता था । निर्धन छात्र भी शिक्षा प्राप्त कर सकता था और इसके बदले में वह उसका गृह कार्य करता था ।अध्यापक का कर्तव्य था कि बिना कुछ छिपाये अपने समस्त ज्ञान शिष्यों को बतलायें ।वह इस बात से प्रभावित नहीं होता था कि उसका शिष्य एक दिन उससे भी आगे बढ़ जाएगा ।अध्यापक अपने उद्यम को उच्च और प्रतिष्ठित मानते थे । उनका जीवन सादा था, इस कारण समाज में उनका सम्मान था ।

आदर (Regarda)-राजा, माता-पिता और देवता की भांति गुरु का सम्मान और आदर करना छात्र का कर्तव्य माना जाता था ।उसको शिष्टाचार और सदाचार के नियमों का अनुसरण करना पडता था। प्रातः समय उठकर आचार्य का अभिवादन करना, सर्वदा उनसे नीचे के आसन पर बैठना तथा भड़कीले वस्त्र न पहनना उनका कर्तव्य था। गाली-गलौज और चुगलखोरी करना बुरा माना जाता था। पुत्र के समान विद्यार्थी को गुरू की व्यक्तिगत सेवा करनी पड़ती थी। आचार्य को जल देवा, दातौन पहुचाना , उनका आसन उठाना तथा स्नान के लिए जल की व्यवस्था करना शिष्यों का कर्तव्य था। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें आचार्य का बर्तन और कपडे भी साफ करना पडता था । इसके उपरांत भी अध्यापक विद्यार्थी को ऐसा कार्य करने का आदेश नहीं दे सकते थे, जिससे उनके अध्ययन में बाधा पड़ती हो। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध प्रत्यक्ष था, . किसी संस्था के माध्यम से नहीं। इस कारण स्वाभाविक रूप से उनके सम्बन्ध घनिष्ठ और प्रेमपूर्ण थे। साधारण बात पर शिष्य गुरु का परित्याग नहीं करता था। गुरुजनों को भी अपने शिष्यों से प्रगाढ़ वात्सल्य प्रेम हो जाता था। कभी-कभी तो वे अपनी पुत्रियों के लिए उन्हे पति के रूप में चुन लेते थे। समावर्तन संस्कार के बाद भी गुरु और शिष्य के सम्बन्ध पूर्ववत घनिष्ठ बने रहते थे।

दिनचर्या (Daily Routine)- विद्यार्थी सवेरे चार बजे उठ कर नित्य क्रिया से निवृत्त होकर, स्नान और ईश-प्रार्थना करते थे। वेदों के विद्यार्थी सवेरे का अधिकांश समय हवन-यज्ञ आदि क्रियाओं के संपादन में लगाते थे। अन्य विद्यार्थी प्रार्थना के पश्चात् बचे हुए समय को नवीन पाठ दुहराने में व्यतीत करते थे। यह क्रम 11 बजे तक चलता था और फिर ये भोजन के लिए उठ जाते थे। 2 बजे फिर से अध्ययन प्रारंभ होकर सूर्यास्त तक समापात

होता था। सायं का समय व्यायाम में जाता था। सूर्यास्त के समय संध्यावंदन और हवन होता, फिर भोजन । निर्धन विद्यार्थी, जो दिन का समय गुरु के गृह कार्य में बिताते थे, रात्रि को अपना अधिकांग समय अध्ययन में बिताते थे। विद्यार्थियों के लिए प्रतिदिन प्रात: और सायं भिक्षा मांगना धार्मिक कर्तव्य समझा जाता था। भिक्षा से प्राप्त भोजन पवित्र माना जाता था। भिक्षा का नियम विद्यार्थियों के लिए इस कारण बनाया गया था कि उनमें विनम्रता आए। इस नियम ने गरीब और अमीर का अन्तर मिटा दिया, जिससे निर्धन विद्यार्थी भी सरलता से शिक्षा प्राप्त कर सकता था।

नैतिकता (Morality)-प्राचीन भारतीय चाहते थे कि विद्यार्थी का जीवन शिष्टाचार, मर्यादा और आत्मसंयम से पूर्ण हो। चरित्र निर्माण के लिए दैहिक गुणों पर जोर दिया जाता था। विचार और कार्य से ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता था। कामवासनाओं के नियंत्रण से मन और चरित्र दृढ़ होते थे। मांस-मदिरा, मिष्ठान्न , आभूषण आदि से कामवासना उदीम होती थी. इस कारण छात्रों को इनका सेवन वर्जित था। सादा जीवन और उच्च विचार विद्यार्थियों के लिए आदर्श माना जाता था। भोजन और वस्त्र पर्याप्त होते थे किन्तु बहुत सादे। विद्यार्थियों को अपनी इन्द्रियों और वासना पर नियंत्रण करना पड़ता था. किन्तु दमन नहीं। संयम पर जोर दिया जाता था, ताकि विद्यार्थी और अध्ययन में एकाग्रता बनी रहे तथा उसका शरीर बलवान हो।

1.**14 दण्ड (Punishmient)प्राचीन** भारत में छात्रों को दण्ड देने की प्रथा प्रचलित थी। उस समय दण्ड के रूप थे-समझना, उपदेश देना, उपवास करना तथा मनु के अनुसार गुरु रज्जु या पतली छड़ी से छात्र को दण्ड देना।

1.15 शिक्षा संस्थाओं के रूप (Forms of Educational Institution)वैदिक कालीन शिक्षा के केन्द्र गुरुकुल थे, जो सम्पूर्ण भारत में फैले थे। उत्तर भारत में तक्षशिला, शिक्षा के केन्द्र गुरुकुल थे, जो सम्पूर्ण भारत में कल्याणी, तंजौर, मालखण्ड आदि प्रसिद्ध शिक्षा के केन्द्र थे। काशी, काँची, कर्नाटक तथा नासिक आदि तीर्थस्थानों पर भी शिक्षण कार्य होता था इन संस्थाओं के अतिरिक्त ऋषि आश्रम, चरण आदि में शिक्षा प्रदान की जाती थी। कुछ आचार्य भ्रमण करते हुए विद्या का प्रसार करते थे, उन्हें परिव्राजक कहते थे । प्राचीन साहित्य में ब्रह्म मुहूर्त को स्वाध्याय के लिये सर्वोत्तम बताया गया है। विद्वानों का अनुमान है कि प्रातः 7 से 11 बजे तक तथा तीसरे प्रहर 2 बजे से 5-6 बजे तक शिक्षण कार्य चलता था। निर्धन छात्रों के लिये रात को शिक्षण होता था ।

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था में आध्यात्मिक तथा भौतिक प्रकार के पाठ्यक्रम प्रचलित थे। कठोपनिषद में दो प्रकार की विद्याओं का उल्लेख मिलता है-(क) परा (आध्यात्मिक) तथा (ख) अपरा (लौकिक या भौतिक) विद्या। परा विद्या के अन्तर्गत वेद, वेदान्त, उपनिषद, पुराण, दर्शन तथा नीतिशा आदि विषय पढ़ाये जाते थे। अपरा विद्या के अन्तर्गत इतिहास, ज्योतिष, गणित, भौतिकशा, प्राणिशा , भूगर्भ विद्या आदि विषय शामिल थे। उत्तर वैदिक काल में कुछ अन्य विषय, जैसे- राजनीतिशा , अर्थशा, पशुपालन, आयुर्वेद, सैन्य विज्ञान, ललित कलाएँ आदि भी सम्मिलित कर लिये गये थे।

1.**16 नारी शिक्षा (Women Education**)-प्राचीनकाल में लगभग ई.पू. 300 तक नारी का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। पुत्र और पुत्रियों को समान रूप में शिक्षा देना माता-पिता का कर्तव्य माना जाता था। लड़कियां प्रायः सोलह वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रह सकती थी। बालक के समान बालिका के लिए भी उपनयन के पश्चात सोलह वर्ष की अवस्था तक उसे शिक्षा दी जाती थी, जिससे उसे योग्य वर मिल सके। अथर्ववेद के अनुसार नारी विवाह के उपरान्त तभी सफल हो सकती है, जबकि उसे ब्रह्मचर्य अवस्था में भती-भाँति शिक्षित किया गया हो। यह शिक्षा विशेषकर वैदिक साहित्य से सम्बन्धित होती थी, जिससे बह हवन-यज्ञों में अपने पति के साथ भाग ले सके।

ऋग्वेद में अनेक मंत्रों की रचना महिलाओं ने की। अनुश्रुतियों के अनुसार ऋग्वेद में 20 कवयित्रियों की रचनाएँ हैं, उनमें से कुछ के नाम है, विश्वधारा, सिकता, निवावरी, घेष्षा , रोयशा, लोपामुद्रा, अपाला तथा उर्वशी। यज्ञ में पति-पत्नी, दोनों को ही समान रूप से सक्रिय रहना पड़ता था ।

छात्राओं के प्रकार (Types of Girl Students)-छात्राओं के इस समय दो वर्ग 2-1-सद्योवधु और 2-ब्रह्मवादिनी। साद्योवधु 15 या 16 की उम्र तक, जब तक उनका विवाह नहीं हो जाता, अध्ययन किया करती थीं। इन्हें प्रार्थना और यज्ञों लिए आवश्यक महत्वपूर्ण वैदिक मंत्र पढ़ाएँ जाते थे तथा संगीत और नृत्य कला की भी शिक्षा दी जाती थी । ब्रह्मवादिनी युवतियां विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए आजीवन विवाह न करके अध्ययन करती थी ।

विषय (Subject)- वेदों के अतिरिक्त अनेक विदुषिया पूर्वमीमांसा में भी रूचि लेती थीं । यह एक शुष्क और कठिन विषय है, जिसका संबंन्ध हवन और यज्ञ की समस्याओं से था ।काशमृत्सनी मीमांसा पर एक पुस्तक की रचना की थी, जिसे उसी के नाम से काशमृत्सनी कहा जाता है । जो छात्राए इसका विशेष अध्ययन करती थी उन्हें काशकृत्सना कहते थे ।

दर्शन शिक्षा (Philosophical Education)- उपनिषद् काल में जब दर्शन के अध्ययन का खूब प्रचार हुआ, तो नारियां इसमें भी पीछे नहीं रहीं ।याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी, ऐसी ही नारी थी, जो वस्त्र आभूषण की अपेक्षा दर्शन की समस्याओं में अधिक रूचि लेती थीं । विदेह के राजा जनक के यज्ञ के अवसर पर जो दार्शनिक शास्त्रार्थ हुआ, उसमे यज्ञवल्य से सबसे सूक्ष्म और दुरुह प्रश्न गार्गी ने पूछे थे ,जिससे यह सिद्ध होता है कि वह उच्च कोटि की नैयायिक और दार्शनिक थी। उत्तर रामचरित की आत्रेयी भी ऐसी ही विद्वषी थी ,जिसने वाल्मीकि तथा अगस्त से वेदान्त की शिक्षा ग्रहण की ।

1.17सारांश (summary)-इस पाठ में आपने वैदिक काल में शिक्षा के स्वरूप को जाना । उक्त काल में गुरु-शिष्य संबंध को जाना ।शिक्षण काल में अपनाई जानें वाली नियम,कायदे कानून, को जाना व समझा ।तत्कालीन समय में गुरु का समाज में स्थान, उनका उनके शिष्य के जीवन में स्थान अथवा महत्व को जाना ।गुरु का माता पिता से भी ऊँचा स्थान को भी तर्क संगत ढंग से बताया गया है ।इसके अलावा ,अध्ययन की अवधि, पाठ्यक्रम, ढण्ड का ढंग, शिक्षा का दर्शन इत्यादि को विस्तार से बताया गया है ।

1.18 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)-

Q.1 Write an essay on Characteristics of Vedic age Education.
वैदिक काल की शिक्षा की विशेषताओं पर एक लेख लिखिए ।
Q.2 Write an essay on Women Education in Ancient India.
प्राचीन भारत में नारी शिक्षा पर एक निबंध लिखिए ।
Q.3 What were the chief characteristics of Education in Ancient India?Discuss.
प्राचीन भारत की शिक्षा की मुख्य विशेषताए क्या थी?विवेचना कीजिये ।